International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 03-07-2026, Accepted: 03-08-2026, Published: 18-08-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 253-259

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियों की राजनीतिक एवं आर्थिक भूमिका : एक विश्लेषण

डॉ. अनुपम कुमारी
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhssr.2026.12.3.12286

सारांश
गुप्तोत्तर भारत (छठी से बारहवीं शताब्दी ई.) के राजनीतिक एवं आर्थिक इतिहास में श्रेणियों ने उत्पादन, व्यापार, शिल्प, वित्त तथा शहरी अर्थव्यवस्था के संगठन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल में केंद्रीय सत्ता के अपेक्षाकृत कमजोर होने और क्षेत्रीय राज्यों के उदय के साथ श्रेणियाँ केवल आर्थिक संस्थाएँ ही नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने स्थानीय प्रशासन, कर–संग्रह, सार्वजनिक निर्माण, धार्मिक संस्थाओं के संरक्षण तथा राजसत्ता के साथ सहयोगात्मक संबंध स्थापित कर राजनीतिक प्रभाव भी अर्जित किया। व्यापारिक मार्गों के विस्तार, समुद्री वाणिज्य तथा मंदिर–आधारित अर्थव्यवस्था के विकास ने श्रेणियों की गतिविधियों को और सुदृढ़ बनाया। प्रस्तुत शोध–पत्र अभिलेखीय, साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक स्रोतों के आधार पर गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियों की राजनीतिक एवं आर्थिक भूमिका का विश्लेषण करता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि श्रेणियाँ तत्कालीन भारतीय समाज में आर्थिक स्थिरता, शहरी विकास, राजस्व व्यवस्था तथा सांस्कृतिक संरक्षण की प्रमुख वाहक थीं और उन्होंने प्रारम्भिक मध्यकालीन भारतीय राज्य एवं अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मुलशब्द: गुप्तोत्तर भारत, श्रेणियाँ, प्रारम्भिक मध्यकाल, व्यापार एवं वाणिज्य, शिल्पकार संगठन, आर्थिक संस्थाएँ, शहरीकरण

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारतीय इतिहास में प्रारम्भिक मध्यकाल (लगभग छठी से बारहवीं शताब्दी ईस्वी) एक महत्वपूर्ण संक्रमणकाल के रूप में उभरकर सामने आता है। इस अवधि में राजनीतिक स्तर पर एक ओर जहाँ अखिल भारतीय साम्राज्य का स्थान अनेक क्षेत्रीय राजवंशों—जैसे वर्धन, राष्ट्रकूट, पाल, प्रतिहार, चालुक्य, पल्लव, चोल तथा अन्य स्थानीय शक्तियों ने ले लिया, वहीं दूसरी ओर आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में भी व्यापक परिवर्तन हुए। इस परिवर्तित परिदृश्य में श्रेणियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे सशक्त संस्थाओं में विकसित हुईं। श्रेणियाँ केवल व्यापारियों और शिल्पकारों के संगठन मात्र नहीं थीं, बल्कि वे उत्पादन, वितरण, मूल्य–निर्धारण, व्यापारिक अनुशासन, गुणवत्ता नियंत्रण, ऋण एवं बैंकिंग व्यवस्था तथा अंतर–क्षेत्रीय और समुद्री व्यापार के संचालन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।1 अनेक अभिलेखों एवं ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि श्रेणियाँ अपनी सामूहिक निधि का उपयोग सार्वजनिक निर्माण, सिंचाई, धर्मशालाओं, मंदिरों, तालाबों तथा शैक्षणिक एवं धार्मिक संस्थानों के संरक्षण में करती थीं, जिससे उनका सामाजिक प्रभाव भी अत्यधिक बढ़ गया था। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण कई श्रेणियाँ स्थानीय प्रशासन और क्षेत्रीय शासकों की विश्वसनीय सहयोगी बन गईं तथा उन्हें कर–संग्रह, व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा, मुद्रा के प्रचलन, सार्वजनिक परियोजनाओं के वित्तपोषण तथा प्रशासनिक कार्यों में भी भागीदारी प्राप्त हुई। दक्षिण भारत के चोल कालीन अभिलेखों में ऐन्नूरुवर, मणिग्रामम् तथा अंजुवन्नम् जैसी व्यापारिक श्रेणियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के मध्य समुद्री व्यापार को संगठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[2] इसी प्रकार उत्तर भारत एवं पश्चिमी भारत में भी व्यापारी एवं शिल्पी श्रेणियाँ स्थानीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला थीं। श्रेणियों की आर्थिक शक्ति ने उन्हें राजनीतिक प्रभाव भी प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप वे राज्य और समाज के मध्य एक महत्वपूर्ण मध्यस्थ संस्था के रूप में स्थापित हुईं। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य अभिलेखीय, साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक स्रोतों के आधार पर गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियों की राजनीतिक एवं आर्थिक भूमिका का समग्र विश्लेषण करना है। अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत में श्रेणियाँ केवल आर्थिक संगठन नहीं थीं, बल्कि वे राज्य व्यवस्था, शहरी विकास, व्यापारिक नेटवर्क, सामाजिक कल्याण, सांस्कृतिक संरक्षण तथा क्षेत्रीय राजनीतिक संरचना के सुदृढ़ीकरण में सक्रिय और प्रभावशाली संस्थाओं के रूप में कार्य कर रही थीं। इस प्रकार, गुप्तोत्तर भारत की आर्थिक समृद्धि, शहरीकरण, व्यापारिक विस्तार तथा राजनीतिक स्थिरता को समझने के लिए श्रेणियों की भूमिका का अध्ययन अत्यंत आवश्यक और प्रासंगिक है।[3]

गुप्तोत्तर काल का राजनीतिक एवं आर्थिक परिदृश्य

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत का राजनीतिक एवं आर्थिक परिदृश्य व्यापक परिवर्तनों से गुज़रा। गुप्तों के केंद्रीकृत शासन के स्थान पर अनेक क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ, जिनमें उत्तर भारत में वर्धन, गुर्जर–प्रतिहार, पाल तथा राष्ट्रकूट और दक्षिण भारत में चालुक्य, पल्लव, पांड्य, राष्ट्रकूट तथा चोल जैसे शक्तिशाली राजवंश प्रमुख थे। इस राजनीतिक विखंडन के बावजूद भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार, कृषि, शिल्प और नगरीय जीवन पूर्णतः समाप्त नहीं हुए, बल्कि उन्होंने क्षेत्रीय आवश्यकताओं और नई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को पुनर्गठित किया। विभिन्न राजवंशों के मध्य निरंतर संघर्ष अवश्य था, किन्तु अधिकांश शासकों ने व्यापारिक गतिविधियों, नगरों और व्यावसायिक संस्थाओं को संरक्षण प्रदान किया क्योंकि राज्य की आय का एक बड़ा स्रोत व्यापारिक कर, बाजार शुल्क और उत्पादन से प्राप्त राजस्व था। परिणामस्वरूप स्थानीय प्रशासन और व्यापारिक समुदायों के बीच परस्पर सहयोग की प्रवृत्ति विकसित हुई।[4]

आर्थिक दृष्टि से यह काल कृषि के विस्तार, भूमि–अनुदानों, मंदिर–आधारित अर्थव्यवस्था तथा शिल्प एवं व्यापार के पुनर्संगठन का युग था। राजाओं द्वारा ब्राह्मणों, मंदिरों, मठों तथा धार्मिक संस्थाओं को व्यापक भूमि–अनुदान दिए जाने से अनेक नए कृषि क्षेत्रों का विकास हुआ और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विस्तार हुआ। साथ ही, मंदिर केवल धार्मिक केंद्र ही नहीं रहे, बल्कि वे आर्थिक गतिविधियों, धन–संचय, ऋण वितरण, वस्तुओं के भंडारण तथा स्थानीय व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र भी बन गए। नगरों में विभिन्न

शिल्पकारों और व्यापारियों की श्रेणियाँ वस्तुओं के उत्पादन, गुणवत्ता नियंत्रण, मूल्य निर्धारण और व्यापारिक अनुशासन का संचालन करती थीं। वस्त्र उद्योग, धातु–शिल्प, हाथीदांत, आभूषण, मिट्टी के बर्तन, जहाज़ निर्माण तथा मसालों के व्यापार जैसी आर्थिक गतिविधियाँ इस काल में निरंतर विकसित होती रहीं।[5]

गुप्तोत्तर काल में आंतरिक एवं बाह्य व्यापार दोनों का उल्लेखनीय विकास हुआ। उत्तरापथ और दक्षिणापथ जैसे प्राचीन स्थल मार्गों के अतिरिक्त समुद्री व्यापार ने विशेष गति प्राप्त की। पश्चिमी तट के भृगुकच्छ (भरूच), सोपारा और कालीकट जैसे बंदरगाह तथा पूर्वी तट के ताम्रलिप्ति, कावेरीपट्टनम और नागपट्टनम जैसे समुद्री केंद्र भारत को श्रीलंका, दक्षिण–पूर्व एशिया, चीन तथा अरब देशों से जोड़ते थे। इस व्यापार में वस्त्र, मसाले, रत्न, हाथीदांत, धातुएँ, सुगंधित पदार्थ तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक वस्तुओं का व्यापक आदान–प्रदान होता था। विशेष रूप से दक्षिण भारत के चोल शासकों ने एक शक्तिशाली नौसेना का निर्माण कर समुद्री व्यापार को प्रोत्साहन दिया, जिससे भारतीय व्यापारिक श्रेणियों का प्रभाव दक्षिण–पूर्व एशिया तक विस्तृत हुआ। इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता श्रेणियों और व्यापारिक निगमों का बढ़ता हुआ प्रभाव था। ऐन्नूरुवर, मणिग्रामम्, अंजुवन्नम् तथा अन्य व्यापारी संगठनों ने न केवल व्यापार का संचालन किया, बल्कि वे बैंकिंग, ऋण व्यवस्था, सार्वजनिक निर्माण तथा धार्मिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करने जैसे कार्यों में भी सक्रिय रहे। अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इन श्रेणियों के पास अपनी स्वतंत्र निधि, नियमावली, प्रशासनिक व्यवस्था तथा न्यायिक अधिकार भी थे। आर्थिक रूप से सशक्त होने के कारण ये संस्थाएँ स्थानीय प्रशासन और शासकों की विश्वसनीय सहयोगी बन गईं तथा कई बार राजकीय नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में भी उनकी भागीदारी रही।[6]

यद्यपि कुछ इतिहासकारों ने भूमि–अनुदानों की वृद्धि और सामंतवादी प्रवृत्तियों के कारण इस काल को नगरीय पतन और व्यापारिक मंदी का युग माना है, किन्तु नवीन अभिलेखीय, पुरातात्त्विक तथा समुद्री व्यापार संबंधी साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि भारत के अनेक क्षेत्रों में व्यापारिक गतिविधियाँ निरंतर सक्रिय थीं। विशेषकर दक्षिण भारत, पश्चिमी तट और पूर्वी समुद्री क्षेत्रों में आर्थिक समृद्धि, अंतरराष्ट्रीय व्यापार तथा शहरी विकास की प्रक्रिया जारी रही। अतः गुप्तोत्तर काल को केवल राजनीतिक विखंडन का युग न मानकर आर्थिक पुनर्संरचना, क्षेत्रीय आर्थिक विकास, व्यापारिक विस्तार और व्यावसायिक संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण का काल भी माना जाना चाहिए। इसी व्यापक राजनीतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि में श्रेणियों का विकास हुआ, जिन्होंने प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत की अर्थव्यवस्था, प्रशासन और सामाजिक संरचना को स्थायित्व एवं गतिशीलता प्रदान की।[7]

श्रेणियों की अवधारणा, स्वरूप एवं संगठन

प्राचीन एवं गुप्तोत्तर भारत की आर्थिक संरचना में श्रेणियाँ व्यापारियों, शिल्पकारों, उद्योगपतियों तथा विभिन्न व्यवसायों से जुड़े व्यक्तियों के संगठित संघ थे, जिनका उद्देश्य उत्पादन, व्यापार, गुणवत्ता नियंत्रण, मूल्य निर्धारण तथा अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा करना था। 'श्रेणी' शब्द का उल्लेख मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, जातक कथाओं तथा अनेक अभिलेखों में मिलता है।[8] इन स्रोतों से स्पष्ट होता है कि श्रेणियाँ केवल आर्थिक संगठन नहीं थीं, बल्कि सामाजिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक अधिकारों से संपन्न स्वायत्त संस्थाएँ थीं। गुप्तोत्तर काल में जब क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ और व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार हुआ, तब श्रेणियों का महत्व और अधिक बढ़ गया। उन्होंने उत्पादन एवं वितरण की संपूर्ण प्रक्रिया को संगठित करते हुए व्यापारिक अनुशासन, व्यावसायिक नैतिकता तथा आर्थिक स्थिरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विभिन्न व्यवसायों– जैसे स्वर्णकार, लौहकार, कुम्हार, तैलिक, बुनकर, बढ़ई, हाथीदांत शिल्पी, रत्न–व्यापारी तथा वस्त्र–निर्माता की अपनी–अपनी स्वतंत्र श्रेणियाँ होती थीं, जो अपने सदस्यों के हितों का संरक्षण करती थीं और व्यवसाय से संबंधित नियमों का पालन सुनिश्चित करती थीं।[9]

श्रेणियों का संगठन अत्यंत सुव्यवस्थित एवं अनुशासित था। प्रत्येक श्रेणी का एक प्रमुख होता था, जिसे विभिन्न क्षेत्रों में श्रेष्ठी, ज्येष्ठक, प्रधान, मुख्य, अथवा महाजन जैसे नामों से संबोधित किया जाता था। यह अधिकारी श्रेणी के प्रशासन, वित्तीय प्रबंधन, विवादों के निपटारे तथा राज्य के साथ संबंधों का संचालन करता था। उसके सहयोग के लिए वरिष्ठ सदस्यों की एक परिषद या कार्यकारिणी होती थी, जो सामूहिक रूप से महत्वपूर्ण निर्णय लेती थी। श्रेणियों के अपने लिखित अथवा प्रचलित नियम होते थे, जिनका पालन सभी सदस्यों के लिए अनिवार्य था। सदस्यता सामान्यतः समान व्यवसाय से जुड़े व्यक्तियों को ही दी जाती थी तथा नए सदस्यों को प्रशिक्षण, अनुभव और नैतिक योग्यता के आधार पर स्वीकार किया जाता था। यदि कोई सदस्य नियमों का उल्लंघन करता था, तो उसे आर्थिक दंड, सामाजिक बहिष्कार अथवा सदस्यता समाप्त करने जैसी सजाएँ दी जा सकती थीं। इससे श्रेणियों के भीतर अनुशासन, गुणवत्ता और विश्वास बना रहता था।[10]

गुप्तोत्तर काल की श्रेणियाँ केवल उत्पादन और व्यापार तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे वित्तीय संस्थाओं के रूप में भी कार्य करती थीं। अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि श्रेणियाँ जनता, मंदिरों तथा धनी व्यक्तियों की धनराशि को जमा करती थीं और उस पर निश्चित ब्याज देती थीं। इस प्रकार वे आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था के प्रारंभिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती थीं। संचित निधि का उपयोग व्यापारिक निवेश, ऋण वितरण, सार्वजनिक निर्माण, धार्मिक अनुष्ठानों, तालाबों, कुआँ, धर्मशालाओं, मंदिरों तथा शिक्षा संस्थानों के निर्माण एवं संरक्षण में किया जाता था। कई बार शासक भी श्रेणियों के पास धन जमा कराते थे, जिसकी आय धार्मिक अथवा सार्वजनिक कार्यों पर व्यय की जाती थी।[11] इससे स्पष्ट होता है कि श्रेणियाँ आर्थिक संसाधनों के कुशल प्रबंधन में अत्यंत सक्षम थीं और समाज में उनकी विश्वसनीयता अत्यधिक थी। संगठनात्मक दृष्टि से श्रेणियों का नेटवर्क स्थानीय, क्षेत्रीय तथा अंतर–क्षेत्रीय स्तर तक विस्तृत था। विशेष रूप से दक्षिण भारत में ऐन्नूरुवर, मणिग्रामम् तथा अंजुवन्नम् जैसी व्यापारिक श्रेणियाँ भारत के विभिन्न भागों के साथ–साथ श्रीलंका, श्रीविजय, जावा, सुमात्रा और दक्षिण–पूर्व एशिया तक सक्रिय थीं। इन संगठनों के अपने व्यापारिक प्रतिनिधि, गोदाम, परिवहन व्यवस्था तथा विदेशी व्यापारिक संपर्क थे। वे समुद्री एवं स्थल मार्गों से वस्त्र, मसाले, धातुएँ, रत्न, हाथीदांत तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं का व्यापार करती थीं। कई अभिलेखों से यह भी ज्ञात होता है कि इन श्रेणियों को स्थानीय प्रशासन द्वारा करों में रियायतें, व्यापारिक सुरक्षा तथा विशेषाधिकार प्रदान किए जाते थे। आर्थिक शक्ति के कारण वे राजकीय नीतियों को प्रभावित करने की क्षमता भी रखती थीं।[12]

इस प्रकार, गुप्तोत्तर भारत की श्रेणियाँ एक विकसित, स्वायत्त और बहुआयामी संस्था थीं, जिनका कार्यक्षेत्र केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं था। उन्होंने उत्पादन, व्यापार, वित्त, श्रम–संगठन, सामाजिक कल्याण, धार्मिक संरक्षण तथा स्थानीय प्रशासन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका सुव्यवस्थित संगठन, अनुशासित कार्यप्रणाली, वित्तीय क्षमता तथा राजसत्ता के साथ सहयोगात्मक संबंध यह सिद्ध करते हैं कि श्रेणियाँ प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत की आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना की सबसे महत्वपूर्ण संस्थाओं में से एक थीं। उनके माध्यम से न केवल व्यापार और उद्योग को स्थायित्व मिला, बल्कि भारतीय समाज में

आर्थिक समृद्धि, शहरीकरण, सांस्कृतिक संरक्षण और प्रशासनिक दक्षता को भी सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ।[13]

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियों की राजनीतिक भूमिका

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियाँ केवल व्यापार एवं शिल्प से संबंधित आर्थिक संगठन नहीं थीं, बल्कि वे तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था की भी महत्वपूर्ण सहयोगी संस्थाएँ बन चुकी थीं। गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत में अनेक क्षेत्रीय राज्यों – जैसे पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट, चालुक्य, पल्लव तथा चोल का उदय हुआ, जिसके परिणामस्वरूप प्रशासन का विकेंद्रीकरण हुआ। इस नई राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक कार्यों के सुचारु संचालन हेतु शासकों को संगठित और विश्वसनीय संस्थाओं की आवश्यकता थी। श्रेणियाँ अपनी आर्थिक शक्ति, अनुशासित संगठन, व्यापक जनाधार तथा वित्तीय संसाधनों के कारण इस आवश्यकता की पूर्ति करती थीं।[14] अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राज्य व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा, कर–संग्रह, बाजारों के नियमन, वस्तुओं के मूल्य निर्धारण तथा व्यापारिक विवादों के समाधान में श्रेणियों का सहयोग प्राप्त करता था। कई स्थानों पर श्रेणी–प्रधान स्थानीय प्रशासनिक परिषदों के सदस्य होते थे और राजकीय अधिकारियों के साथ मिलकर नगरों एवं व्यापारिक केंद्रों का संचालन करते थे। श्रेणियाँ व्यापारिक गतिविधियों के माध्यम से राज्य की आय बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं, क्योंकि व्यापार से प्राप्त सीमा–शुल्क, बाजार–कर, बंदरगाह–कर तथा उत्पादन–कर राजकोष के प्रमुख स्रोत थे।[15] इस कारण शासक वर्ग श्रेणियों को संरक्षण प्रदान करता था तथा उन्हें विशेष व्यापारिक अधिकार, करों में रियायतें, सुरक्षा तथा प्रशासनिक सुविधाएँ उपलब्ध कराता था। दक्षिण भारत के चोल कालीन अभिलेखों में ऐन्नूरुवर, मणिग्रामम् तथा अंजुवन्नम् जैसी शक्तिशाली व्यापारिक संस्थाओं को राजकीय संरक्षण प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है। इन संगठनों को विदेशी व्यापार संचालित करने, गोदाम स्थापित करने, व्यापारिक चौकियाँ विकसित करने तथा समुद्री मार्गों पर निर्बाध आवागमन की सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं। इससे स्पष्ट होता है कि श्रेणियाँ राज्य और व्यापारिक समाज के मध्य एक प्रभावी सेतु के रूप में कार्य करती थीं तथा उनकी राजनीतिक उपयोगिता केवल स्थानीय स्तर तक सीमित न होकर व्यापक क्षेत्रीय प्रशासन तक विस्तृत थी।[16]

राजनीतिक दृष्टि से श्रेणियों का महत्व केवल प्रशासनिक सहयोग तक सीमित नहीं था, बल्कि वे सामाजिक स्थिरता, सार्वजनिक व्यवस्था तथा राज्य की वैधता को सुदृढ़ करने में भी सक्रिय भूमिका निभाती थीं। अनेक श्रेणियाँ अपने आर्थिक संसाधनों का उपयोग मंदिरों, मठों, धर्मशालाओं, जलाशयों, सिंचाई व्यवस्थाओं, सड़कों तथा अन्य सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए करती थीं, जिससे उन्हें स्थानीय समाज में अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी। इस प्रकार वे राज्य की कल्याणकारी नीतियों के पूरक के रूप में कार्य करती थीं। कई अभिलेखों से यह भी ज्ञात होता है कि श्रेणियों को अपने सदस्यों के मध्य उत्पन्न विवादों का निपटारा करने, अनुशासन बनाए रखने तथा दोषी सदस्यों पर आर्थिक दंड लगाने का अधिकार प्राप्त था। इस प्रकार वे अर्ध–न्यायिक संस्थाओं के रूप में भी कार्य करती थीं, जिससे स्थानीय न्याय व्यवस्था पर राज्य का बोझ कम होता था।[17] आर्थिक समृद्धि के कारण अनेक श्रेणियाँ संकट के समय शासकों को ऋण उपलब्ध कराती थीं, राजकीय परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती थीं तथा युद्ध अथवा प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में आवश्यक संसाधनों की आपूर्ति सुनिश्चित करती थीं। दक्षिण भारत के चोल शासन में व्यापारिक श्रेणियों ने समुद्री व्यापार के विस्तार के साथ–साथ भारतीय राजनीतिक प्रभाव को श्रीलंका, श्रीविजय, जावा, सुमात्रा तथा दक्षिण–पूर्व एशिया तक पहुँचाने में भी अप्रत्यक्ष योगदान दिया। इस प्रकार श्रेणियाँ केवल आर्थिक समृद्धि की वाहक नहीं थीं, बल्कि उन्होंने राज्य की प्रशासनिक क्षमता, राजस्व व्यवस्था, स्थानीय स्वशासन, सामाजिक समन्वय तथा राजनीतिक स्थिरता को भी सुदृढ़ किया। इसलिए गुप्तोत्तर भारत की राजनीतिक संरचना का अध्ययन श्रेणियों की भूमिका के बिना अधूरा माना जाएगा, क्योंकि उन्होंने राज्य और समाज के मध्य सहयोग, विश्वास तथा संस्थागत समन्वय की ऐसी परंपरा विकसित की जिसने प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत की शासन व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया।[18]

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियों की आर्थिक भूमिका

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियाँ आर्थिक जीवन की सबसे महत्वपूर्ण संस्थाओं के रूप में विकसित हुईं। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद यद्यपि राजनीतिक विखंडन की स्थिति उत्पन्न हुई, फिर भी व्यापार, उद्योग, शिल्प एवं कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था निरंतर सक्रिय रही। इस आर्थिक संरचना को व्यवस्थित और गतिशील बनाए रखने में श्रेणियों की केंद्रीय भूमिका थी। श्रेणियाँ उत्पादन, वितरण, विपणन, मूल्य–निर्धारण तथा गुणवत्ता नियंत्रण जैसी आर्थिक गतिविधियों का संचालन करती थीं। प्रत्येक व्यवसाय–जैसे स्वर्णकार, लौहकार, तैलिक, कुम्हार, बढ़ई, वस्त्र–निर्माता, बुनकर, हाथीदांत शिल्पी तथा रत्न–व्यापारी की अपनी पृथक श्रेणी होती थी, जो उत्पादन की तकनीक, श्रम–विभाजन, उत्पाद की गुणवत्ता तथा व्यापारिक मानकों का निर्धारण करती थी।[19] इन संगठनों के माध्यम से वस्तुओं के निर्माण में एकरूपता, व्यापार में पारदर्शिता तथा बाजार में विश्वास बना रहता था। श्रेणियाँ नए कारीगरों को प्रशिक्षण प्रदान करती थीं, तकनीकी ज्ञान का संरक्षण करती थीं तथा व्यवसाय की परंपराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित करती थीं। इस प्रकार उन्होंने भारतीय शिल्प एवं उद्योगों की निरंतरता तथा आर्थिक स्थिरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विभिन्न अभिलेखों एवं साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि श्रेणियाँ अपने सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा करती थीं तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें कच्चा माल, पूँजी, श्रम और विपणन की सुविधाएँ भी उपलब्ध कराती थीं। परिणामस्वरूप उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई और स्थानीय एवं क्षेत्रीय बाजारों का विस्तार संभव हुआ।[20]

गुप्तोत्तर काल में श्रेणियाँ व्यापारिक गतिविधियों के संचालन और विस्तार की प्रमुख वाहक थीं। उत्तरापथ, दक्षिणापथ तथा अन्य प्रमुख स्थल मार्गों के साथ–साथ समुद्री व्यापार मार्गों पर भी उनका व्यापक नियंत्रण था। पश्चिमी तट के भृगुकच्छ (भरूच), सोपारा तथा पूर्वी तट के ताम्रलिप्ति, नागपट्टनम और कावेरीपट्टनम जैसे बंदरगाहों से भारतीय व्यापारी श्रीलंका, चीन, अरब, फारस तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों के साथ नियमित व्यापार करते थे। वस्त्र, मसाले, रेशम, हाथीदांत, बहुमूल्य रत्न, धातुएँ, सुगंधित पदार्थ, औषधियाँ तथा हस्तशिल्प उत्पाद प्रमुख निर्यात वस्तुएँ थीं, जबकि घोड़े, विलासिता की वस्तुएँ तथा कुछ विशेष धातुएँ आयात की जाती थीं। दक्षिण भारत की प्रसिद्ध व्यापारिक श्रेणियाँ– जैसे ऐन्नूरुवर, मणिग्रामम् तथा अंजुवन्नम् ने अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक नेटवर्क विकसित किए और भारत के आर्थिक संबंधों को दक्षिण–पूर्व एशिया तक विस्तारित किया। इन संगठनों के अपने गोदाम, व्यापारिक प्रतिनिधि, परिवहन व्यवस्था तथा विदेशी व्यापारिक संपर्क थे, जिससे व्यापारिक जोखिम कम होता था और व्यापार अधिक संगठित एवं सुरक्षित बनता था। राज्य भी इन श्रेणियों को व्यापारिक सुरक्षा, करों में रियायतें तथा बंदरगाहों और बाजारों के उपयोग की विशेष सुविधाएँ प्रदान करता था, क्योंकि इनके माध्यम से राजकोष को पर्याप्त राजस्व प्राप्त होता था। इस प्रकार श्रेणियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था के आंतरिक और बाह्य व्यापार की आधारशिला थीं।[21]

गुप्तोत्तर काल की श्रेणियों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आर्थिक कार्य वित्तीय संस्थाओं अथवा प्रारंभिक बैंकिंग संगठनों के रूप में कार्य करना था। अनेक ताम्रपत्रों एवं अभिलेखों से ज्ञात होता है कि मंदिर, मठ, धनी व्यापारी, स्थानीय निवासी तथा कभी–कभी शासक भी अपनी धनराशि श्रेणियों के पास सुरक्षित जमा करते थे। श्रेणियाँ इस पूँजी का उपयोग व्यापारिक निवेश, ऋण वितरण तथा उत्पादन के विस्तार में करती थीं और जमा धन पर निश्चित ब्याज भी देती थीं। इस प्रकार वे आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के प्रारंभिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती थीं। श्रेणियों के पास संचित निधि का उपयोग केवल व्यापार तक सीमित नहीं था; वे सिंचाई के साधनों, कुआँ, तालाबों, सड़कों, धर्मशालाओं, मंदिरों तथा शैक्षणिक संस्थाओं के निर्माण एवं संरक्षण के लिए भी आर्थिक सहायता प्रदान करती थीं। इससे स्पष्ट होता है कि उनका आर्थिक योगदान सामाजिक एवं सार्वजनिक कल्याण से भी जुड़ा हुआ था। संकट अथवा प्राकृतिक आपदाओं के समय श्रेणियाँ व्यापारियों एवं शिल्पकारों को ऋण उपलब्ध कराती थीं, जिससे उत्पादन एवं व्यापार में निरंतरता बनी रहती थी। आर्थिक संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन के कारण श्रेणियाँ समाज की सबसे विश्वसनीय संस्थाओं में गिनी जाती थीं और अनेक स्थानों पर उनकी वित्तीय साख राज्य से भी अधिक मजबूत मानी जाती थी।[22]

समग्रतः गुप्तोत्तर भारत की अर्थव्यवस्था के विकास, स्थिरता तथा विस्तार में श्रेणियों की भूमिका अत्यंत व्यापक और बहुआयामी थी। उन्होंने उत्पादन, व्यापार, उद्योग, बैंकिंग, पूँजी निवेश, श्रम संगठन, तकनीकी संरक्षण तथा सार्वजनिक निर्माण जैसे विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्रेणियों के कारण भारतीय उद्योगों में गुणवत्ता, व्यापार में अनुशासन तथा बाजार में स्थिरता बनी रही। साथ ही, उन्होंने स्थानीय, क्षेत्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक नेटवर्क को सुदृढ़ बनाकर भारतीय अर्थव्यवस्था को व्यापक वैश्विक संपर्कों से जोड़ा। इसलिए यह कहा जा सकता है कि गुप्तोत्तर काल में श्रेणियाँ केवल आर्थिक संगठन नहीं थीं, बल्कि वे भारतीय आर्थिक संरचना की रीढ़ थीं, जिन्होंने प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत में आर्थिक समृद्धि, शहरीकरण, व्यापारिक विस्तार और वित्तीय संगठन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया।[23]

श्रेणियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियाँ केवल आर्थिक एवं व्यापारिक संगठन नहीं थीं, बल्कि वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की भी अत्यंत प्रभावशाली संस्थाएँ थीं। प्रारम्भिक मध्यकाल में जब समाज वर्ण, जाति, व्यवसाय तथा स्थानीय समुदायों के आधार पर संगठित था, तब श्रेणियों ने विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोगों को एक संगठित सामाजिक पहचान प्रदान की। प्रत्येक श्रेणी अपने सदस्यों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण करती थी तथा उनके बीच अनुशासन, सहयोग और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करती थी। सदस्यता सामान्यतः समान व्यवसाय से जुड़े व्यक्तियों को प्रदान की जाती थी, किन्तु इसका उद्देश्य केवल आर्थिक हितों की रक्षा करना नहीं था, बल्कि सामाजिक सुरक्षा और पारस्परिक सहयोग को भी सुनिश्चित करना था।[24] यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती, वह प्राकृतिक आपदा, व्यापारिक हानि अथवा अन्य संकट का सामना करता, तो श्रेणी सामूहिक निधि से उसकी तथा उसके परिवार की सहायता करती थी। इस प्रकार श्रेणियाँ सामाजिक सुरक्षा की प्रारम्भिक संस्थाओं के रूप में कार्य करती थीं। वे अपने सदस्यों के बीच उत्पन्न विवादों का समाधान भी स्वयं करती थीं और आवश्यकता पड़ने पर दंड, जुर्माना अथवा सामाजिक बहिष्कार जैसे उपाय अपनाकर संगठनात्मक अनुशासन बनाए रखती थीं। इससे समाज में न्याय, सहयोग तथा सामाजिक संतुलन की भावना विकसित होती थी। श्रेणियों के माध्यम से शिल्पकारों और व्यापारियों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, जिससे नगरों में एक प्रभावशाली व्यापारी एवं कारीगर वर्ग का उदय हुआ, जिसने स्थानीय समाज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[25]

सांस्कृतिक दृष्टि से भी श्रेणियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था। गुप्तोत्तर काल में धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के संरक्षण में इन संगठनों की सक्रिय भूमिका रही। अनेक अभिलेखों, ताम्रपत्रों तथा मंदिर–लेखों से ज्ञात होता है कि श्रेणियाँ मंदिरों, बौद्ध विहारों, जैन उपाश्रयों, धर्मशालाओं, सरायों, कुआँ, तालाबों तथा उद्यानों के निर्माण एवं रख–रखाव के लिए उदारतापूर्वक दान देती थीं। धार्मिक उत्सवों, यज्ञों, मेलों तथा सार्वजनिक आयोजनों के वित्तपोषण में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान था। मंदिर उस समय केवल पूजा के स्थल नहीं थे, बल्कि शिक्षा, कला, संगीत, नृत्य, साहित्य तथा आर्थिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र भी थे। इसलिए मंदिरों को दिए गए श्रेणियों के दान का प्रभाव व्यापक सांस्कृतिक विकास पर पड़ता था। दक्षिण भारत के चोल, पल्लव एवं पांड्य कालीन अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि ऐन्नूरुवर, मणिग्रामम् तथा अन्य व्यापारिक श्रेणियाँ मंदिरों को भूमि, स्वर्ण, धनराशि तथा व्यापारिक आय का एक भाग दान स्वरूप प्रदान करती थीं। इस आर्थिक सहयोग से मंदिरों में शिक्षा, कला एवं सांस्कृतिक परंपराओं का संरक्षण संभव हुआ। कई श्रेणियाँ धार्मिक यात्राओं, तीर्थस्थलों तथा सांस्कृतिक आयोजनों के लिए भी सहायता प्रदान करती थीं, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के मध्य सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा मिला। व्यापारिक मार्गों के माध्यम से भारतीय धर्म, भाषा, लिपि, कला, स्थापत्य एवं सांस्कृतिक परंपराओं का प्रसार श्रीलंका, जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, चंपा तथा अन्य दक्षिण–पूर्व एशियाई क्षेत्रों तक हुआ, जिसमें व्यापारिक श्रेणियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी।[26]

श्रेणियों ने शिल्प, कला एवं तकनीकी ज्ञान के संरक्षण और विकास में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। प्रत्येक श्रेणी अपने व्यवसाय से संबंधित तकनीकों, उपकरणों, उत्पादन विधियों तथा गुणवत्ता मानकों का संरक्षण करती थी और नए कारीगरों को व्यवस्थित प्रशिक्षण प्रदान करती थी। यह प्रशिक्षण केवल व्यावसायिक दक्षता तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें नैतिक आचरण, व्यावसायिक अनुशासन तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा भी सम्मिलित होती थी। परिणामस्वरूप विभिन्न शिल्प जैसे धातु कला, मूर्तिकला, वस्त्र निर्माण, हाथीदांत शिल्प, रत्नकारी, लकड़ी की नक्काशी तथा स्थापत्य कला में उच्च गुणवत्ता एवं निरंतरता बनी रही। अनेक मंदिरों, मूर्तियों तथा स्थापत्य स्मारकों के निर्माण में इन श्रेणियों से जुड़े कारीगरों की महत्वपूर्ण भूमिका थी, जिसने भारतीय कला और स्थापत्य को वैश्विक पहचान दिलाई। इसके अतिरिक्त, व्यापारिक श्रेणियों ने विभिन्न क्षेत्रों के बीच वस्तुओं के साथ–साथ सांस्कृतिक विचारों, धार्मिक मान्यताओं, भाषाओं और कलात्मक परंपराओं के आदान–प्रदान को भी प्रोत्साहित किया। इस प्रकार गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियाँ आर्थिक समृद्धि की वाहक होने के साथ–साथ सामाजिक एकता, सांस्कृतिक संरक्षण, धार्मिक सहिष्णुता, लोककल्याण तथा भारतीय सभ्यता के विकास की महत्वपूर्ण आधारशिला थीं। उनके बहुआयामी योगदान ने प्रारम्भिक मध्यकालीन भारतीय समाज को संगठित, समृद्ध एवं सांस्कृतिक रूप से सशक्त बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[27]

दक्षिण भारत की व्यापारिक श्रेणियाँ

गुप्तोत्तर काल, विशेषकर आठवीं से तेरहवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य, दक्षिण भारत में व्यापारिक श्रेणियों का अभूतपूर्व विकास हुआ। चोल, पल्लव, पांड्य, चालुक्य तथा राष्ट्रकूट जैसे शक्तिशाली राजवंशों के संरक्षण में व्यापार एवं वाणिज्य का व्यापक विस्तार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप संगठित व्यापारिक संस्थाओं का उदय हुआ। इनमें ऐन्नूर्रुवर, मणिग्रामम् तथा

नानादेशी सर्वाधिक महत्वपूर्ण थीं। ये संस्थाएँ केवल व्यापारिक संगठन नहीं थीं, बल्कि बहुआयामी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक निकाय थीं। इनके माध्यम से दक्षिण भारत का व्यापार श्रीलंका, मालदीव, अरब, फारस, चीन तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के राज्यों जावा, सुमात्रा, श्रीविजय, कंबोडिया और चंपा तक विस्तृत हुआ। इन श्रेणियों के पास अपना प्रशासन, नियमावली, व्यापारिक प्रतिनिधि, गोदाम, परिवहन व्यवस्था तथा वित्तीय संसाधन थे। ये संगठन स्थानीय शासकों के साथ घनिष्ठ संबंध रखते थे तथा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा, करों के भुगतान, बंदरगाहों के विकास और विदेशी व्यापार के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इनके अभिलेख दक्षिण भारत के अतिरिक्त श्रीलंका, इंडोनेशिया और थाईलैंड तक प्राप्त हुए हैं, जो इनके अंतरराष्ट्रीय स्वरूप का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।[28]

ऐन्नूर्रुवर दक्षिण भारत की सबसे प्रभावशाली व्यापारिक श्रेणी थी। इसका उद्भव वर्तमान कर्नाटक के ऐहोल (।पीवसम) क्षेत्र से माना जाता है और इसका नाम श्पाँच सौ स्वामियोंश से संबंधित है। यह संगठन लंबी दूरी के व्यापार में विशेषज्ञ था तथा स्थल और समुद्री दोनों व्यापारिक मार्गों पर सक्रिय था। ऐन्नूर्रुवर के व्यापारी वस्त्र, मसाले, हाथीदांत, बहुमूल्य रत्न, घोड़े, धातुएँ, सुगंधित पदार्थ तथा विलासिता की वस्तुओं का व्यापार करते थे। यह श्रेणी अपने सदस्यों के लिए सुरक्षा, पूँजी, ऋण, परिवहन तथा विदेशी व्यापारिक संपर्क उपलब्ध कराती थी। चोल शासकों के संरक्षण में इस संगठन ने दक्षिण–पूर्व एशिया तक भारतीय व्यापार का विस्तार किया। अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ऐन्नूर्रुवर मंदिरों, धर्मशालाओं, जलाशयों तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए भी उदारतापूर्वक दान देती थी। इस प्रकार यह संस्था आर्थिक समृद्धि के साथ–साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरक्षण की भी प्रमुख वाहक थी।[29]

मणिग्रामम् दक्षिण भारत की एक अन्य प्रमुख व्यापारिक श्रेणी थी, जिसका संबंध मुख्यतः नगरों, बंदरगाहों और समुद्री व्यापार से था। यह संगठन स्थानीय तथा अंतरराष्ट्रीय दोनों प्रकार के व्यापार में सक्रिय था और विशेष रूप से तमिलनाडु, केरल तथा श्रीलंका के व्यापारिक केंद्रों में इसका प्रभाव देखा जाता है। मणिग्रामम् के व्यापारी बहुमूल्य रत्न, मोती, वस्त्र, मसाले, धातुएँ तथा अन्य विलासिता की वस्तुओं का व्यापार करते थे। यह श्रेणी स्थानीय बाजारों को विदेशी व्यापारिक नेटवर्क से जोड़ने का कार्य करती थी। इसके सदस्यों को राजाओं द्वारा विशेष व्यापारिक अधिकार, करों में रियायतें तथा बंदरगाहों के उपयोग की सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं। अनेक मंदिर अभिलेखों में मणिग्रामम् द्वारा मंदिरों को भूमि, धन तथा स्वर्ण दान करने का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि यह संगठन केवल आर्थिक संस्था नहीं था, बल्कि धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन के संरक्षण में भी सक्रिय भूमिका निभाता था। अपने सुव्यवस्थित संगठन, वित्तीय संसाधनों तथा व्यापारिक अनुशासन के कारण मणिग्रामम् दक्षिण भारत की आर्थिक व्यवस्था का एक प्रमुख स्तंभ बन गया।[30]

नानादेशी का शाब्दिक अर्थ है ष्अनेक देशों के व्यापारीष्। यह नाम ही इस संगठन के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को स्पष्ट करता है। नानादेशी श्रेणी के सदस्य विभिन्न क्षेत्रों और देशों में व्यापार करने वाले व्यापारी थे, जिन्होंने भारत के विभिन्न भागों को विदेशी व्यापारिक केंद्रों से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह संगठन स्थल एवं समुद्री दोनों मार्गों से व्यापार करता था और श्रीलंका, अरब, फारस, चीन तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ व्यापक वाणिज्यिक संबंध स्थापित किए हुए था। नानादेशी व्यापारी विभिन्न क्षेत्रों में व्यापारिक चौकियाँ स्थापित करते थे तथा स्थानीय शासकों से व्यापारिक संधियाँ और संरक्षण प्राप्त करते थे। इनके संगठन में विभिन्न भाषाओं, जातियों और क्षेत्रों के व्यापारी सम्मिलित होते थे, जिससे यह संस्था बहु–क्षेत्रीय एवं बहु–सांस्कृतिक स्वरूप धारण कर चुकी थी। नानादेशी श्रेणी ने व्यापारिक पूँजी के संचय, वस्तुओं के सुरक्षित परिवहन, विदेशी बाज़ारों तक भारतीय उत्पादों की पहुँच तथा भारतीय संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस संगठन के माध्यम से भारतीय लिपि, धर्म, स्थापत्य, कला और व्यापारिक परंपराएँ दक्षिण–पूर्व एशिया तक पहुँचीं।[31]

समग्रतः ऐन्नूर्रुवर, मणिग्रामम् और नानादेशी जैसी व्यापारिक श्रेणियाँ गुप्तोत्तर एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन दक्षिण भारत की आर्थिक शक्ति की आधारशिला थीं। इन्होंने व्यापार, उद्योग, बैंकिंग, पूँजी निवेश, समुद्री वाणिज्य तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक संबंधों को सुदृढ़ किया। साथ ही, मंदिरों, सार्वजनिक निर्माण, शिक्षा, धर्म तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को संरक्षण देकर सामाजिक जीवन को भी समृद्ध बनाया। इन संगठनों ने दक्षिण भारत को हिंद महासागर व्यापार नेटवर्क का प्रमुख केंद्र बनाया तथा भारतीय आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव को दक्षिण–पूर्व एशिया तक विस्तारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसलिए दक्षिण भारत की इन व्यापारिक श्रेणियों को केवल व्यापारी संगठन न मानकर प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संरचना की प्रभावशाली संस्थाओं के रूप में देखा जाना चाहिए।[32]

अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्य

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियों की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक भूमिका के अध्ययन में अभिलेखीय एवं साहित्यिक स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण में ताम्रपत्रों, शिलालेखों, मंदिर–अभिलेखों, दानपत्रों, मुद्राओं तथा समकालीन साहित्यिक ग्रंथों से प्राप्त जानकारी विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होती है। इन स्रोतों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि श्रेणियाँ केवल व्यापारिक संगठन नहीं थीं, बल्कि वे वित्तीय, प्रशासनिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों से भी गहराई से जुड़ी हुई थीं। गुप्तोत्तर काल के अनेक अभिलेखों में श्रेणियों द्वारा मंदिरों को दान, सार्वजनिक निर्माण, व्यापारिक करों के भुगतान, भूमि–अनुदानों के प्रबंधन तथा स्थानीय प्रशासन में सहभागिता का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत के चोल, पल्लव तथा राष्ट्रकूट शासकों के अभिलेखों में ऐन्नूर्रुवर, मणिग्रामम् तथा नानादेशी जैसी व्यापारिक श्रेणियों का बार–बार उल्लेख हुआ है। तंजावुर, उत्तिरमेरूर, नागपट्टनम, बेलगाम, ऐहोल तथा कांचीपुरम् से प्राप्त अभिलेख इन व्यापारिक संगठनों के सुव्यवस्थित संगठन, उनकी आर्थिक शक्ति तथा विदेशी व्यापार में उनकी सक्रिय भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन अभिलेखों से यह भी ज्ञात होता है कि श्रेणियों को व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा, बंदरगाहों के उपयोग, करों में रियायत तथा स्थानीय प्रशासन में सहयोग जैसे विशेषाधिकार प्राप्त थे। कई अभिलेख यह प्रमाणित करते हैं कि व्यापारिक श्रेणियाँ मंदिरों में स्थायी निधि जमा करती थीं, जिसकी आय से दीप प्रज्वलन, धार्मिक अनुष्ठान, शिक्षा तथा लोककल्याण संबंधी कार्य संपन्न किए जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि श्रेणियाँ आर्थिक गतिविधियों के साथ–साथ धार्मिक एवं सामाजिक जीवन की भी प्रमुख संरक्षक थीं।[33]

साहित्यिक स्रोत भी श्रेणियों के इतिहास के अध्ययन में समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र यद्यपि गुप्तोत्तर काल से पूर्व का ग्रंथ है, फिर भी उसमें वर्णित श्रेणियों की संगठनात्मक व्यवस्था, राज्य के साथ उनके संबंध तथा व्यापारिक नियंत्रण की अवधारणाएँ गुप्तोत्तर काल तक प्रभावी रहीं। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति तथा बृहस्पति स्मृति में श्रेणियों के अधिकारों, कर्तव्यों, न्यायिक अधिकारों तथा व्यावसायिक नियमों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इन धर्मशास्त्रीय ग्रंथों से ज्ञात होता है कि श्रेणियाँ अपने सदस्यों के

विवादों का निपटारा स्वयं करती थीं तथा उन्हें आंतरिक प्रशासन की पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी। बौद्ध साहित्य, विशेषकर जातक कथाएँ, यद्यपि पूर्ववर्ती काल का चित्र प्रस्तुत करती हैं, फिर भी उनमें वर्णित व्यापारी समुदायों, व्यापारिक कारवाँ, समुद्री यात्राओं तथा श्रेणी–संगठनों की परंपरा गुप्तोत्तर काल में भी निरंतर बनी रही। इसके अतिरिक्त हर्षचरित, कादम्बरी, राजतरंगिणी, दशकुमारचरित तथा दक्षिण भारतीय तमिल साहित्य में व्यापारियों, शिल्पकारों, बंदरगाहों और व्यापारिक संस्थाओं के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं, जो तत्कालीन आर्थिक जीवन की सजीव झलक प्रस्तुत करते हैं। विदेशी यात्रियों जैसे चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग और इत्सिंग के यात्रा–वृत्तांत भी भारतीय नगरों, व्यापारिक गतिविधियों, धार्मिक संस्थाओं तथा शिल्पकार समुदायों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। इन सभी अभिलेखीय एवं साहित्यिक स्रोतों का समन्वित अध्ययन यह सिद्ध करता है कि गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियाँ एक विकसित, संगठित और प्रभावशाली संस्था थीं, जिन्होंने न केवल आर्थिक समृद्धि और व्यापारिक विस्तार को गति प्रदान की, बल्कि प्रशासन, सामाजिक संगठन, धार्मिक संरक्षण और सांस्कृतिक विकास में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। इसलिए गुप्तोत्तर भारत के राजनीतिक एवं आर्थिक इतिहास के सम्यक् अध्ययन के लिए अभिलेखीय और साहित्यिक साक्ष्य अपरिहार्य एवं अत्यंत विश्वसनीय आधार माने जाते हैं।[34]

इतिहासलेखन एवं आधुनिक विद्वानों के मत

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियों की राजनीतिक एवं आर्थिक भूमिका के संबंध में इतिहासकारों के मध्य विविध मत पाए जाते हैं। प्रारम्भिक इतिहासलेखन में श्रेणियों को मुख्यतः व्यापारिक एवं शिल्पकार संगठनों के रूप में देखा गया, किन्तु आधुनिक इतिहासकारों ने इनके बहुआयामी स्वरूप पर अधिक बल दिया है। राष्ट्रवादी इतिहासकारों, विशेषकर राधाकुमुद मुखर्जी और आर.सी. मजूमदार ने श्रेणियों को प्राचीन भारत की उन्नत आर्थिक संस्थाओं के रूप में प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि भारतीय व्यापारी और शिल्पकार अत्यंत संगठित थे तथा उन्होंने भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के मध्य व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी कृति इंडियन शिपिंग में भारतीय समुद्री व्यापार की प्रगति तथा व्यापारिक श्रेणियों की संगठनात्मक क्षमता को रेखांकित किया है। वहीं आर.सी. मजूमदार ने दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव के विस्तार में व्यापारिक समुदायों और श्रेणियों के योगदान को विशेष महत्व दिया। इन इतिहासकारों के अनुसार श्रेणियाँ केवल आर्थिक संगठन नहीं थीं, बल्कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रसार की प्रभावशाली वाहक भी थीं।[35]

मार्क्सवादी एवं सामाजिक–आर्थिक इतिहासकारों ने श्रेणियों का विश्लेषण आर्थिक संरचना, उत्पादन संबंधों और सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में किया है। आर.एस. शर्मा ने भूमि–अनुदानों की वृद्धि, सामंतवादी प्रवृत्तियों तथा नगरों और व्यापार के अवनयन के संदर्भ में यह तर्क दिया कि गुप्तोत्तर काल में अनेक क्षेत्रों में श्रेणियों की पूर्ववर्ती शक्ति कमजोर हुई और आर्थिक गतिविधियाँ अधिकाधिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा सामंती संरचना की ओर उन्मुख हुईं। उनके अनुसार मुद्रा–आधारित अर्थव्यवस्था के सीमित होने और स्थानीयकरण की प्रक्रिया ने व्यापारिक संगठनों की गतिविधियों को प्रभावित किया। दूसरी ओर बी.डी. चट्टोपाध्याय ने इस दृष्टिकोण को अधिक संतुलित रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा कि गुप्तोत्तर काल को केवल आर्थिक अवनति का युग मानना उचित नहीं है। उनके अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास की गति अलग–अलग थी और अनेक स्थानों पर व्यापारिक गतिविधियाँ तथा श्रेणियाँ निरंतर सक्रिय रहीं। रणबीर चक्रवर्ती ने अभिलेखीय एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध किया कि प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत में व्यापारिक नेटवर्क, शहरी केंद्र तथा श्रेणियाँ नए रूप में विकसित हुईं। उन्होंने विशेष रूप से व्यापारिक मार्गों, बंदरगाहों और समुद्री वाणिज्य में श्रेणियों की सक्रिय भूमिका पर बल दिया तथा यह प्रतिपादित किया कि गुप्तोत्तर भारत की अर्थव्यवस्था केवल कृषि पर आधारित नहीं थी, बल्कि व्यापार एवं शिल्प भी उसके महत्वपूर्ण अंग थे।[36]

समकालीन इतिहासलेखन में समुद्री इतिहास और वैश्विक व्यापार के संदर्भ में श्रेणियों का अध्ययन और अधिक व्यापक हुआ है। हिमांशु प्रभा राय ने भारतीय समुद्री व्यापार, बंदरगाहों तथा हिंद महासागर के व्यापारिक नेटवर्क के अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि भारतीय व्यापारी श्रेणियाँ समुद्री संपर्कों के विकास की प्रमुख आधारशिला थीं। उनके अनुसार व्यापारिक संगठन केवल वस्तुओं के आदान–प्रदान तक सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने धार्मिक विचारों, सांस्कृतिक परंपराओं तथा तकनीकी ज्ञान के प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। केनेथ आर. हॉल ने दक्षिण–पूर्व एशिया और दक्षिण भारत के व्यापारिक संबंधों का विश्लेषण करते हुए ऐन्नूर्रुवर, मणिग्रामम् और नानादेशी जैसी श्रेणियों को हिंद महासागर व्यापार नेटवर्क की प्रमुख संस्थाएँ बताया है। हर्मन कुल्के ने चोल साम्राज्य और दक्षिण भारत की व्यापारिक श्रेणियों के राजनीतिक प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए यह प्रतिपादित किया कि इन संगठनों ने राजसत्ता, स्थानीय प्रशासन तथा अंतरराष्ट्रीय व्यापार के मध्य प्रभावी समन्वय स्थापित किया। उपेन्द्र सिंह तथा रोमिला थापर ने भी उपलब्ध अभिलेखीय, साहित्यिक और पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि श्रेणियाँ भारतीय समाज की स्वायत्त संस्थाएँ थीं, जिन्होंने आर्थिक विकास, शहरीकरण, सामाजिक संगठन तथा प्रशासनिक स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[37]

समग्रतः आधुनिक इतिहासलेखन यह स्पष्ट करता है कि गुप्तोत्तर भारत की श्रेणियों का मूल्यांकन केवल आर्थिक संगठनों के रूप में नहीं किया जा सकता। विभिन्न इतिहासकारों के मतों में दृष्टिकोण का अंतर अवश्य है – कुछ उन्हें आर्थिक अवनति के संदर्भ में देखते हैं, जबकि अन्य उन्हें आर्थिक पुनर्संरचना, क्षेत्रीय विकास और समुद्री व्यापार के विस्तार की प्रमुख शक्ति मानते हैं। तथापि अधिकांश आधुनिक विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि श्रेणियाँ प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत की सबसे संगठित संस्थाओं में थीं, जिन्होंने व्यापार, उद्योग, वित्त, प्रशासन, सामाजिक कल्याण, धार्मिक संरक्षण तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान के क्षेत्रों में बहुआयामी योगदान दिया। अतः गुप्तोत्तर भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना को समझने के लिए श्रेणियों तथा उनसे संबंधित इतिहासलेखन का अध्ययन अत्यंत आवश्यक और प्रासंगिक माना जाता है।[38]

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियाँ प्रारम्भिक मध्यकाल तक व्यापार, उद्योग, वित्त और प्रशासन की महत्वपूर्ण संस्थाएँ बनी रहीं, किन्तु समय के साथ उनकी शक्ति और प्रभाव में क्रमिक कमी आने लगी। इसके प्रमुख कारणों में राजनीतिक अस्थिरता, क्षेत्रीय संघर्ष, व्यापारिक मार्गों की असुरक्षा, भूमि–अनुदानों की वृद्धि तथा सामंतवादी प्रवृत्तियों का विस्तार शामिल था। आर्थिक गतिविधियों का केंद्र धीरे–धीरे नगरों से ग्रामीण क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित होने लगा, जिससे दीर्घ–दूरी के व्यापार और शहरी व्यापारिक संगठनों का महत्व कम हुआ। समुद्री व्यापार में विदेशी व्यापारिक समुदायों की बढ़ती भागीदारी, मंदिरों एवं स्थानीय अभिजात वर्ग के हाथों में आर्थिक संसाधनों का केंद्रीकरण तथा बदलती व्यापारिक परिस्थितियों के अनुरूप श्रेणियों की सीमित अनुकूलन क्षमता ने भी उनके पतन को गति प्रदान की। इसके अतिरिक्त, श्रेणियों के नियमों का अत्यधिक रूढ़िवादी और जाति–आधारित स्वरूप, नई तकनीकों एवं व्यापारिक पद्धतियों को अपनाने में बाधक बना। परिणामस्वरूप, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में श्रेणियाँ लंबे

समय तक सक्रिय रहीं, फिर भी उनकी पूर्ववर्ती आर्थिक और राजनीतिक शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होती गई।[39]

गुप्तोत्तर भारत में श्रेणियाँ आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की अत्यंत महत्वपूर्ण संस्थाएँ थीं, जिन्होंने उत्पादन, व्यापार, शिल्प, वित्त, बैंकिंग और बाजार व्यवस्था को संगठित करने में केंद्रीय भूमिका निभाई। उन्होंने स्थानीय प्रशासन, कर–संग्रह, सार्वजनिक निर्माण, धार्मिक संस्थाओं के संरक्षण तथा सामाजिक कल्याण के कार्यों में सक्रिय योगदान देकर राज्य और समाज के मध्य एक प्रभावी सेतु का कार्य किया। दक्षिण भारत की ऐन्नूर्रुवर, मणिग्रामम् और नानादेशी जैसी व्यापारिक श्रेणियों ने भारतीय समुद्री व्यापार को अंतरराष्ट्रीय स्तर तक विस्तारित किया तथा भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के मध्य आर्थिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ बनाया। अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि श्रेणियाँ केवल आर्थिक संगठन नहीं थीं, बल्कि स्वायत्त, संगठित और प्रभावशाली संस्थाएँ थीं, जिन्होंने प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत की आर्थिक समृद्धि, शहरी विकास, सामाजिक स्थिरता और सांस्कृतिक संरक्षण में उल्लेखनीय योगदान दिया। अतः गुप्तोत्तर भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना को समझने के लिए श्रेणियों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है।

संदर्भ

1. शर्मा, आर.एस., इंडियन फ्यूडलिज़्म, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1980, पृ. 112–113.
2. वही, पृ. 246.
3. चट्टोपाध्याय, बी.डी., द मेकिंग ऑफ अर्ली मीडीवल इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1994, पृ. 115–117.
4. सिंह, उपेन्द्र, ए हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट एंड अर्ली मीडीवल इंडिया, पियर्सन एजुकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 402.
5. थापर, रोमिला, अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 419.
6. वही, पृ. 561–562.
7. चक्रवर्ती, रणबीर, ट्रेड एंड ट्रेडर्स इन अर्ली इंडियन सोसाइटी, मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 183.
8. वही, पृ. 226–228.
9. मुखर्जी, राधाकुमुद, इंडियन शिपिंग: ए हिस्ट्री ऑफ द सी–बोर्न ट्रेड एंड मैरिटाइम एक्टिविटी ऑफ द इंडियन्स, किताब महल, इलाहाबाद, 1912, पृ. 97–100.
10. मुखर्जी, राधाकुमुद, चंद्रगुप्त मौर्य एंड हिज टाइम्स, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966, पृ. 312.
11. मजूमदार, आर.सी., एंशिएंट इंडियन कॉलोनिज़ इन द फार ईस्ट, खंडदृ1, एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली, 1985, पृ. 41.
12. राय, हिमांशु प्रभा, द आर्कियोलॉजी ऑफ सीफेरिंग इन एंशिएंट साउथ एशिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2003, पृ. 64–65.
13. हॉल, केनेथ आर., मैरिटाइम ट्रेड एंड स्टेट डेवलपमेंट इन अर्ली साउथईस्ट एशिया, यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई प्रेस, होनोलूलू, 1985, पृ. 118.
14. कोएदेस, जॉर्ज, द इंडियनाइज़्ड स्टेट्स ऑफ साउथईस्ट एशिया, यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई प्रेस, होनोलूलू, 1968, पृ. 35.
15. कुल्के, हरमन, नागपट्टिनम टू सुवर्णद्वीप: रिफ्लेक्शन्स ऑन द चोला नेवल एक्सपेडिशन्स, इंस्टीट्यूट ऑफ साउथईस्ट एशियन स्टडीज़, सिंगापुर, 1996, पृ. 22–23.
16. हॉल, केनेथ आर., पूर्वोक्त, पृ. 142.
17. कुल्के, हरमन, पूर्वोक्त, पृ. 78–80
18. सेन, शैलेन्द्रनाथ, एंशिएंट इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइज़ेशन, न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1999, पृ. 271.
19. झा, डी.एन., एंशिएंट इंडिया: एन इंट्रोडक्टरी आउटलाइन, मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1998, पृ. 154.
20. बाशम, ए.एल., द वंडर दैट वाज़ इंडिया, रूपा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2004, पृ. 382.
21. स्टीन, बर्टन, ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वाइली–ब्लैकवेल, ऑक्सफोर्ड, 2010, पृ. 76.
22. कराशिमा, नोबोरु, साउथ इंडियन हिस्ट्री एंड सोसाइटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1984, पृ. 124–125.
23. शास्त्री, के.ए. नीलकंठ, ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1975, पृ. 147.
24. अयंगार, एस. कृष्णस्वामी, साउथ इंडिया एंड हर मुहम्मडन इन्वेडर्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मद्रास, 1921, पृ. 19.
25. सेन, शैलेन्द्रनाथ, मैरिटाइम कॉन्टैक्ट्स बिटवीन इंडिया एंड साउथईस्ट एशिया, न्यू एकेडमिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2010, पृ. 91.
26. वेल्स, एच.जी. क्वारिच, द मेकिंग ऑफ ग्रेटर इंडिया, बर्नार्ड क्वारिच लिमिटेड, लंदन, 1951, पृ. 67–68.
27. व्हीटली, पॉल, द गोल्डन खेरसोनीज़, यूनिवर्सिटी ऑफ मलाया प्रेस, कुआलालम्पुर, 1961, पृ. 203.
28. वोल्टर्स, ओ.डब्ल्यू., अर्ली इंडोनेशियन कॉमर्स, कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, इथाका, 1967, पृ. 74.
29. मंगुइन, पियरे–यव्स, साउथईस्ट एशियन शिपिंग इन द इंडियन ओशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1993, पृ. 46–48.
30. चक्रवर्ती, दिलीप के., द आर्कियोलॉजी ऑफ एंशिएंट इंडियन सिटीज़, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1995, पृ. 134.
31. बाशम, ए.एल., पूर्वोक्त, पृ. 297.
32. हाईम, चार्ल्स, अर्ली कल्चर्स ऑफ मेनलैंड साउथईस्ट एशिया, रिवर बुक्स, बैंकॉक, 2002, पृ. 156.
33. साहू, बी.पी. (सम्पा.), लैंड सिस्टम एंड रूरल सोसाइटी इन अर्ली इंडिया, मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1997, पृ. 172–173.
34. मिक्सिक, जॉन एन., सिंगापुर एंड द सिल्क रोड ऑफ द सी, एनयूएस प्रेस, सिंगापुर, 2013, पृ. 44.
35. घोष, सुचन्द्र, फ्रॉम द ऑक्सस टू द इंडस: ए पॉलिटिकल एंड कल्चरल स्टडी, प्राइमस बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृ. 198–200.
36. सुब्रह्मण्यम, संजय, द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ कॉमर्स: सदर्न इंडिया 1500दृ1650, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1990, पृ. 27–28.
37. सुब्रमणियन, लक्ष्मी, पॉलिटिक्स एंड सोशल कॉन्फ्लिक्ट इन साउथ इंडिया, साउथ एशिया बुक्स, नई दिल्ली, 1999, पृ. 52–53.
38. बाशम, ए.एल., पूर्वोक्त, पृ. 31–32.
39. नागास्वामी, आर., मास्टरपीसेज़ ऑफ चोला आर्ट, तमिल आर्ट्स अकादमी, चेन्नई, 1983, पृ. 58.